ज्ञान बिना मुक्ति नहीं

स्वामी निरंजन

ज्ञान बिना मुक्ति नहीं

स्वामी निरंजन

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
प्रथम मुद्रण : **गुरु पूर्णिमा –२०१०**
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर – २ (उड़िसा) फोन : २३४०१३६
प्रच्छद प्रस्तुति : **विभु**
मूल्य : **रु 20/-**

प्रस्तावना

संसार का प्रत्येक जीव समस्त दुःखों की कारण सहित निवृत्ति एवं पूर्ण आनन्द की प्राप्ति का अभिलाषी है । किन्तु इस लक्ष की प्राप्ति तो मानव जीवन में तभी हो सकती है, जब वह अपनी अन्तःकरण को त्रिदोषों से मुक्त कर सके ?

प्रत्येक जीव में मल, विक्षेप तथा आवरण यह तीन दोष स्वाभाविक रूप से बने रहते है । जब तक इन तीनों दोषों की निवृत्ति नहीं होती है, यह जीव तब तक जन्म-मृत्यु रूप बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता है । इन तीनों दोषों की निवृत्ति हेतु वेद में कर्म, उपासना तथा ज्ञान का साधन प्रतिपादन किया गया है ।

जीव के दोष की निवृत्ति हेतु निष्काम को बताने वाले ८०,००० मन्त्र है । विक्षेप दोष को दूर करने हेतु १६,००० मन्त्र का प्रतिपादन किया गया है तथा जीव के आवरण दोष को दूर करने हेतु ४००० मन्त्रों का प्रतिपादन किया गया है ।

जब जीव के मल दोष की निवृत्ति निष्काम कर्म द्वारा हो जाती है तब वह विक्षेप दोष को दूर करने के लिये साकार या निराकार उपासना प्रारम्भ करता है । किन्तु उसे भक्ति का अनुभव नहीं होता और जीव के मन में ब्रह्म जिज्ञासा या मुक्ति का जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है, तब वह जीव किसी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ की शरण ग्रहण करता है एवं प्रार्थना करता है – '**असतो मां सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतंगमय**' तब वे ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु जीव को उसे कर्म उपासना

एवं उसके फल से वैराग्य दिलाकर ज्ञान में निष्ठा जाग्रत कराने हेतु विभिन्न शास्त्रों के प्रमाण द्वारा उसको आत्मज्ञान में श्रद्धा जाग्रत कराते हैं; क्योंकि बिना आत्मविचार के जीव का कल्याण केवल कर्म उपासना द्वारा नहीं हो सकता ।

जब कोई मुमुक्षु शास्त्र अध्ययन करता है, तब वहाँ वह बारम्बार यह लिखा पाता है कि ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता है । दशरथ, हनुमान, अर्जुन, उद्धव, गोपियाँ, मीरा, नारद अनेकों सहश्र संत महात्माओं ने ज्ञान प्राप्तकर ही मुक्ति प्राप्त की है । इस प्रकार शास्त्र स्वाध्याय करनेवाला साधक जब किसी गुरु की शरण में ज्ञान प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है तो वे संत उसे यह कहकर पीछे हटा देते हैं कि ज्ञान साधना के तुम अधिकारी नहीं हो अभी कर्म, उपासना करो ।

जब कि शास्त्र कहता है ब्रह्म जिज्ञासा का उदय हो जाना ही साधक के ज्ञानाधिकार की योग्यता का प्रबल प्रमाण है । जब जीव के मल विक्षेप दोष निष्काम कर्म, उपासना द्वारा निवृत्त हो जाता है, तभी उसके शुद्ध मन में ब्रह्म जिज्ञासा उदय होती है ।

यदि उन संतों से पुछा जाय कि मानव जीवन में ही आत्मज्ञान का अधिकार नहीं होगा तब किस जन्म में आकर कौन निर्णय करेगा कि अब तुम ज्ञान पाने के पात्र बन गये हो ? भगवान श्रीराम कहते हैं–

यह तन कर फल विषयन भाई ।
स्वर्गउ स्वप्न अन्त दुःख दाई ।।
साधन धाम मोक्षकर द्वारा
पाइ न जेह परलोक संवारा
सोकृत निन्दक मंदमति आत्महन गति जाय ।

अब शास्त्र सिद्धान्त व भगवान की वाणी के विरुद्ध जीव को सत पथ से भटकाने वाले, ज्ञान मार्ग में अश्रद्धा करानेवाले दम्भी संत वेशधारी के भय से साधक को मुक्ति दिलाने हेतु यह स्वतन्त्र ग्रन्थ

'**ज्ञान विना मुक्ति नहीं**' में अनेक शास्त्र प्रमाणों का संग्रह किया है, ताकि मुमुक्षु ज्ञान मार्ग को अपने कल्याण का साधन जान श्रद्धा एवं साहस से उसको ग्रहण कर अपना इसी जीवन में कल्याण कर आत्महत्यारे की कुगति से बचकर कैवल्य मोक्ष परमपद को प्राप्त कर सकें ।

जब रामकृष्ण देव की भक्ति साधना पूर्ण होगई तो तोतापुरी जी सद्गुरु ने उसे कहा कि अब तेरी भक्ति पूर्ण होगई, अब अपनी इस काली मां की उपासना को छोड़, मुझसे ज्ञान ले ले । यह तेरे व परमात्मा के बीच आखरी दीवार है । ऐसा ही गुरुवचन से श्रद्धा कर रामकृष्ण ने अपनी भेदभक्ति का त्यागकर परमात्मा के साथ अभेद चिन्तन कर अर्थात् सोऽहम् चिन्तन (वह ब्रह्म मैं हूँ) द्वारा अपना कल्याण कर लिया । ज्ञान से हटाने व कर्म, उपासना में जोड़ने की बात तो सब कहते हैं किन्तु कर्म उपासना सीढ़ी से उठाकर ज्ञान में चढ़ने की बात कोई तोतापुरी जैसा सद्गुरु ही कहने का साहस करता है ।

स्वामी निरंजन

विषय अनुक्रम

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं

गोरा नाम का एक कुम्भार के पास २० गधे थे । शावन का महिना था, चारों तरफ हरियाली छा रही थी । खेतों में फसल खड़ी थी । गोरा अपने गधों को चराने के लिये उन्हें जंगल ले चला और साथ में २० रस्सी भी ले चला। अच्छा घास देख वहाँ ही गधों को रस्सी से बांध चराने छोड़ दिया । १९ गधों को रस्सी बांधने के बाद जब २० वें गधे को बांधने लगा तो देखा की रस्सी नहीं है । अब गोरा चिन्ता में पड़ा । गधे की पूछ पकड़ खड़ा गधे को चरा रहा था । उधर से यादव वकील निकल कर जा रहे थे । गाँव की पहचान थी । यादव ने कहा, अरे गोरा ! क्या बात है, आज कोई काम नहीं है क्या, जो गधे के पूछ पकड़े खड़ा है ? गोरा ने कहा काम तो बहुत है, भट्टी भी तैयार करना है किन्तु मुसीबत में पड़ गया हूँ। इस गधे को बांधने हेतु रस्सी नहीं है, बाकी गधे तो बांध चुका हूँ यह एक बिना रस्सी के छोड़ घर जाऊँ कैसे ? किसी के खेत में चला गया तो खेत का मालिक नुकसान का दावा मेरे नाम ठोक देगा, गाँव का मामला है झगड़ा मोल लेना ठीक नहीं ।

यादव वकील ने गोरा का बयान सुन कहा गधे को बांधने हेतु रस्सी की क्या जरुरत ? इसे तू ऐसे ही बांध दे जैसे १९ गधों को बांधा है । गोरा कुम्भार ने वकील साहब की बात समझ नहीं पाया तो गोरा ने कहा अरे बाबु ! रस्सी तो नहीं है कैसे बांधु ? यादव ने कहा गधे को बांधने हेतु रस्सी जरुरत नहीं है, तू ऐसे ही बांध दे जैसे १९ को बांधा है।

गोरा ने कहा – वकील बाबु ! कम सुनते हो क्या ? अरे रस्सी नहीं है । वकील साहब ने कहा तू भी क्या मेरी बात नहीं सुनता है । मैं कहता हूँ तू ऐसे ही बांधकर चला जा । गोरा ने कहा क्या मुझे पिटवाना चाहते हो, गाँव में आपस में झगड़ा कराना चाहते हो । यादव ने कहा चल छोड़ इसकी पूंछ, में बांध देता हूँ, गधे को बांधना क्या मुस्किल ? यादव ने खाली हाथ गधे की टांगों में तीन लपेट देकर खाली गांठ बांध दी । गधा बंध गया । यादव ने कहा – 'देखो ! इस तरह इसे योंही बांध दिया जिस तरह १९ को रस्सी से बांधा है । अब जा तेरा काम कर, सन्ध्या को आकर गधे खोलकर ले जाना । अब यह गधा किसी के खेत में नहीं जायगा ।'

गोरा घर चला, दिन में काम करता रहा, सन्ध्या को जंगल पहुँच अपने गधों को खोलते खोलते १९ गधों को खोल घर की तरफ चला दिया किन्तु २0वां गधा जो कुम्हार ने बांधा नहीं था, उसे घर की तरफ चलने को संकेत किया पर वह आगे नहीं बढ़ा । सब गधे घर पहुँच गये २0 नंम्बर वाला जंगल में ही अकेला खड़ा है बिचारा । उसे जब तक खोले नहीं वह कैसे चलें ?

गोरा ने सोचा इस यादव ने मेरे २0 नम्बर वाले गधे पर कुछ मन्त्र कर दिया मालुम पड़ता है । गोरा ने यादव से कहा मेरे गधे पर तुमने क्या यादु किया है, वह चल नहीं रहा है, वहीं जंगल में खड़ा है । यादव ने कहा तुने उसे खोला नहीं होगा । गोरा ने कहा उसे मैंने बांधा कब था ? यादव ने कहा अरे भाई ! जैसे तुने १९ गधों को खोला है इस २0 नम्बर बाले को भी वैसे ही खोल दे, वह मनुष्य थोड़े ही है आखीर है तो गधा । जब नहीं चले तो मेरे पास शिकायत करना । गोरा ने कहा मैंने उसे रस्सी से पीटा तब भी वह थोड़ासा भी आगे नहीं बढ़ा । यादव बाबु ! अब तुम चलो और उसे चलने जैसा करदो । यादव ने कहा –

अरे ! तु जाकर मेरी तरह खाली हाथ उसकी टागों के चारो तरफ तीन बार उलटा चलाना, वह खुल जायगा । उसे १९ गधों की तरह रस्सी मे मैंने थोड़े ही बांधा है ।

गोरा, यादव की बात सुन जंगल में जाकर गधे की टागों के चारो तरफ तीन घेरे उल्टे डाले और गधा, उसी समय घर की तरफ तेजी से चिघाड़ मारता हुआ दौड़ चला कि मैं बन्धन से मुक्त हो गया ।

अब पाठक यहाँ इस गधे नम्बर २0की अवस्था को देख विचार करे कि जो गधे रस्सी से बन्धे थे उन्हें तो रस्सी से ही खोलना पड़ा किन्तु जो अज्ञान से बन्धा खड़ा था, उसे ज्ञान से ही खोलना पड़ा ।

इसी प्रकार इस जीव का संसार बन्धन अज्ञान कृत होने से यह ज्ञान द्वारा ही मुक्त हो सकेगा । लाख कर्म, उपासना, करने से यह मुक्त नहीं हो सकेगा । आदि जगद्गुरु शंकरा चार्य भी इस बात को कहते हैं कि–

न योगेन न सांख्येन कर्मणा नो न विद्यया ।
ब्रह्मात्मैकत्वबोधेन मोक्षः सिद्धयति नान्यथाः।।

– वि. चूड़ा. ५८

मोक्ष न योग से सिद्ध होता है, न सांख्य से, न कर्मों से और न देवी देवता की उपासना से । मुक्ति का प्राप्ति तो केवल ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से अर्थात् ब्रह्म और आत्माकी एकता के ज्ञान से ही होता है और किसी प्रकार नहीं ।

कुरुते गंगा सागर गमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम ।
ज्ञान विहीन सर्वमतेन मुक्ति न भवति जन्म शतेन ।।

मोहमुदगर शंकराचार्य

वदन्तु शाश्त्राणि यजन्तु देवान, कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ।
आत्मैक्यबोधेन विनापि मुक्तिर्न, सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ।

६, विवक चूड़ामणि

भले कोई शास्त्रका व्याख्या करें, देवताओं की पूजन करें, नाना शुभ कर्म करे अथवा देवताओं का भजन–यजन करें तथापि जब तक ब्रह्म और आत्मा की एकता का बोध नहीं होता तब तक सौ ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी मुक्ति नहीं हो सकेगा ।

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तुपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्मकोटिभिः ।। ११ वि. चु

कर्म उपासना चित्तशुद्धि के लिये है, आत्मानुभूति के लिये नहीं । आत्मानुभूति तो विचार से ही होती है, करोड़ों कर्मों से मुक्ति की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ।

चित्तशुद्धार्थे कर्मणा, एकाग्रार्थे उपासन ।
मोक्षार्थे ब्रह्मज्ञानं, इति वेदान्त डिन्डिमः ।।

चित्तशुद्धि के लिये कर्म एवं मन की एकाग्रता हेतु उपासना तथा मोक्ष के लिये ब्रह्मज्ञान ही एकमात्र साधन है, ऐसी वेद का घोषणा है ।

'नान्यः पन्थाः विमुक्तये' – मोक्ष के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है।

'ज्ञान मोक्षप्रद वेद वखाना ।'

'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्' – केवल ज्ञान से ही मोक्ष सम्भव है ।

'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः' – ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है ।

अस्तु यह जीव गधा नम्बर २० ही है क्योंकि इसका बन्धन अज्ञान कृत होने से यह ज्ञान द्वारा मुक्त होता है ।

अनादि काल से संसार का प्रत्येक प्राणी अपने वास्तविक सच्चिदानन्द स्वरूप को भूल जाने के कारण संसार चक्र में फंस जन्म–मरण का असहनीय दुःख भोग रहा है ।

'जनमत मरत दुसह दुःख होई'

अतः जब तक यह जीव अपने सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा का बोध नहीं करेगा तब तक यह दुःखों से कोटी जन्मों मे भी मुक्त नहीं हो सकेगा ।

यह सबके अनुभव का विषय है कि प्रत्येक प्राणी प्रतिक्षण, प्रत्येक क्रिया व चेष्टा द्वारा अखण्ड सुख पाने के लिये ही इच्छा करता है ।

यद्यपि सभी प्राणीयों को इच्छित भोग पदार्थ मिलने पर क्षणिक कल्पित सुख प्राप्त होता है, परन्तु अपने प्राप्त सुख में किसी भी जीव को पूर्ण सन्तोष, पूर्ण तृप्ती नहीं है । सभी जीव जाने अनजाने में समस्त दुःखों से छुटकारा एवं अखण्ड आनन्द को पाने की इच्छा करते हैं, इसे ही मुक्ति नाम से कहा जाता है ।

उसी अखण्डानन्द की प्राप्ति के लिये सभी प्राणी अपनी अपनी बुद्धि और रूचि के अनुसार नाना मार्गों, साधनों में प्रवृत्त होते हैं किन्तु प्राप्तव्य वस्तु सभी की एक है । कोई अर्थ व काम के द्वारा उसकी प्राप्ति के लिये प्रवृत्ति मार्ग में चलते हैं तो कोई धर्म और मोक्ष द्वारा निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त होते हैं ।

निवृत्ति मार्ग में भी कोई सगुण उपासना द्वारा उस परम सुख को प्राप्त करना चाहता है, तो कोई निर्गुण आत्म स्वरूप के ज्ञान द्वारा उसे प्राप्त करना चाहते हैं ।

जो साधक मोक्ष को अस्वीकार करते हैं और कहते हैं कि हमारे लिये तो अपने भगवान के चरणों की भक्ति, उनकी दर्शन, सेवा ही इष्ट

है तो कहना पड़ेगा कि उन चरण–कमलों का सानिध्य भी परम सुख की अपेक्षा से ही है, दुःख पाने, कष्ट पाने के लिये नहीं है । इसलिये मानना होगा कि मुमुक्षु सभी है । जिन्होंने कल्पित भगवान के चरण–कमलों का सानिध्य ही पूर्ण सुख मान लिया है, वे शाश्वत सुख से वंचित रहेंगे ।

वेदान्त अखण्डानन्द की खोज करता है और कहता है कि जहाँ तक देश, काल, वस्तु की सीमा से तुम्हारा सुख बंधा है, वहाँ तक उन अनित्य, परिच्छिन्न, एक देशीय वस्तु में अखण्डानन्द कहाँ ?

अखण्डानन्द असीम व नित्य होने से स्वभाव सिद्ध व नित्य प्राप्त है तथा वह इस सीमित अहंता के निचे ही छिपा हुआ है। सीमित अहंता मायिक नाशवान है । जैसे तरङ्ग अपने सीमित अहंकार को त्याग करके समुद्रसे एकत्व प्राप्त कर सकती है । इसी प्रकार जीव अपने व्यष्टि देहभाव का त्याग कर देह स्थित चैतन्य के आभास जीव भाव का त्याग कर अपने चिदात्म भाव को प्राप्त हो सकता है ।

वेद का भी यह ढिंढोरा है कि जीव ब्रह्म के अभेद ज्ञान द्वारा ही मोक्ष सम्भव है, इसके अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई स्वतन्त्र मार्ग नहीं है ।

यद्यपि वेद वेदान्तने निष्काम कर्म–उपासनादि सभी साधनों को अपने अपने स्थान पर उचित रूप से मान्यता दी है । तथापि ज्ञान की प्राप्ति में जो मल, विक्षेप दोष अवरोधक है, उनकी निवृत्ति हेतु कर्म–उपासना को सहायक माना है ।

देखा गया है कि जो पदार्थ पहले से ही प्राप्त होता है उसे प्राप्त करने का ज्ञान ही साधन पर्याप्त होता है । कर्म साधन वहाँ उपयोगी होता है जहाँ वस्तु अप्राप्त है अथवा उत्पन्न करना है । जैसे मृग की नाभि में कस्तुरी प्राप्त है, तो उसे प्राप्त करने हेतु मृग को किसी प्रकार

के कर्म, साधन तथा भागने–दौड़ने की आवश्यकता नहीं है । किन्तु मनुष्य को मृग से प्राप्त करने के लिये जंगल जाकर मृग को खोजना एवं बांध कर प्राप्त करना होगा ।

जो प्राप्त वस्तु 'परमात्मा' सब जीवों को नित्य प्राप्त है उसे प्राप्त करने के लिये केवल ज्ञान करने की आवश्यकता है, यदि जीव प्राप्त परमात्मा को किसी देश में खोजने हेतु चलागया तो इस जीवन में इस जीव को प्राप्त परमात्मा की अनुभूति नहीं हो सकेगी । क्योंकि खोज में चलने, दौड़ने वाले की दृष्टि सदा अपने से बाहर ही लगी रहती है, उसे दृष्टि को बाहर से लौटाकर अपने तरफ लाने का, विचारने का समय ही नहीं मिलता ।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को आत्मज्ञान का ही उपदेश किया है । निष्काम कर्म, उपासना, योगादि साधन तो मोक्ष में सहायक साधन के रूप में प्रयुक्त हुए है । '**इतिते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया**' गीता : १८/६३ अर्थात् यहाँ तक यह गुह्य से गुह्यतर ज्ञान मैंने तेरे प्रति कहा है । यदि जीव के कल्याण का साधन कर्म, उपासना होता तो यहाँ गुह्यज्ञान के स्थान पर कर्म, उपासना कहना चाहिये था। गीता ज्ञान संवाद का अध्ययन करने वाले के प्रति कहते हैं कि '**ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः**' मैं उसे मानुंगा कि ज्ञानयज्ञ के द्वारा मेरी पूजा की है । गीता : १८/७०

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।

गीता : ४/३३

हे परंतप अर्जुन ! द्रव्यमय यज्ञ की अपेक्षा ज्ञान यज्ञ अत्यन्त श्रेष्ठ है । ज्ञान में प्रवेश करने पर समस्त कर्म, उपासना समाप्त हो जाते हैं जैसे समुद्र में प्रवेश हो जाने पर नदियाँ शान्त एवं समाप्त हो जाती है ।

अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ।।

गीता : १३/११

अनात्म देह संघात से अहंता–ममता भाव का त्याग करके 'अहंआत्मा' भाव में ही स्थित रहना वास्तविक ज्ञान है । इससे विपरित जो भी ब्रह्मलोक पर्यन्त प्राप्ति का साधन है वह सब बन्धन रूप होने से अज्ञान ही है ।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ।।

गीता : १३/२

हे अर्जुन ! यह शरीर 'क्षेत्र' नाम से कहा जाता है और इसको जो जानता है वह जीव क्षेत्रज्ञ जीवात्मा कहलाता है । सब क्षेत्रों में वह क्षेत्रज्ञ जीवात्मा मुझे ही जान । जो अनित्य देह से पृथक् नित्य आत्मा का ज्ञान है, यही मेरे मत से ज्ञान है और यही मुक्ति का साधन है ।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञान गम्यं

वह परमात्मा बोध स्वरूप जानने के योग्य एवं तत्त्वज्ञान से ही प्राप्त करने योग्य है, कर्म, उपासना द्वारा प्राप्त करने योग्य ऐसा नहीं कहा । सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है, इसलिये बाहर खोजने हेतु किसी प्रकार के कर्म साधन करने की किंचित भी आवश्वकता नहीं है । यदि परमात्मा जीव से कहीं दूर स्थान या लोक में होता तो साधन की आवश्यकता होती ।

भगवान अर्जुन से पुनः पूछ रहे हैं कि क्या तुने मेरे द्वारा उपदिष्ट ज्ञान को एकाग्रचित्त से श्रद्धा पूर्वक श्रवण किया है ? क्या तेरा अज्ञान से उत्पन्न मोह व देहभाव नष्ट हुआ है ?

अब साधक विचार करें कि भगवान यहाँ ज्ञान द्वारा अज्ञान जनित मोह नष्ट होने की बात पुछ रहे हैं । क्योंकि अज्ञान की निवृत्ति ज्ञान द्वारा ही होती है अन्य साधन द्वारा नहीं । जैसे अन्धकार की निवृत्ति केवल प्रकाश के द्वारा ही होती है, प्रकाश के बिना अन्धकार किसी साधन से दूर नहीं होता है।

कच्चिदज्ञानसम्मोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ।।

– गीता : १८/७२

अर्जुन निःसन्देह होकर भगवान को उत्तर दे रहा है कि हे प्रभो ! आपके ज्ञानोपदेश द्वारा मेरा अज्ञान जनित मोह नष्ट हो चुका है, मैं सन्देह रहित हो चुका हूँ और अब आपके वचनों का पालन करने के लिये तैयार हूँ ।

अब साधक यहाँ निष्पक्ष भाव से विचारें कि भेद भक्ति द्वारा कल्याण होता तो अर्जुन को बचपन से ही यह सौभाग्य प्राप्त ही था फिर भी उसको मोह नष्ट नहीं हुआ एवं भगवान से प्रार्थना की –

हे प्रभो !

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः
पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

गीता : २/७

सगुण साकार भगवान श्रीकृष्ण के परमभक्त अर्जुन कहते हैं कि धर्म के विषय में मोहित चित्त हुआ स्वभाववाला मैं आप से पुछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याण कारक हो, वह मेरे लिये कहिये, क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ इसलिये आपकी शरण में हूँ, मुझको शिक्षा दीजिये ।

यदि भक्ति द्वारा मोह दूर होता तो गीता ज्ञानोपदेश के पूर्व ही हो जाता फिर इस मोह उत्पत्ति का अवशर ही नहीं आना चाहिये था ।

भागवत के एकादश स्कन्ध अध्याय २९, श्लोक ३७ में उद्धव स्वीकार करता है कि अब तक मैं मोह के महान अन्धकार में भटक रहा था और अब आपकी कृपा से यह ज्ञान गीता श्रवण कर मैं उससे मुक्त हुआ हूँ ।

यदि भक्ति द्वारा मोह नष्ट होता तो पहले ही हो जाता किन्तु बिना ज्ञान के मोह नष्ट नहीं होता है । यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि उद्धव व अर्जुन को ज्ञान प्राप्त करके ही सन्तोष की प्राप्ति हुई ।

नारद भक्ति सुत्र के रचयिता स्वयं नारद जो भगवान के पार्षद ही समझिये वे भगवान सनत्कुमार से प्रार्थना करते हैं कि मैंने सुना है कि भूमा (ब्रह्म) शोक मोह से रहित है जो मेरे हृदय में विद्यमान है फिर भी मैं शोक मोह में डूबा हुआ हूँ । आप मुझे शोक–मोह से मुक्त किजिये । इस प्रार्थना को सुनकर सनकादिकों ने नारद को ब्रह्म उपदेश किया '**तरति शोकं आत्मवित**' तब नारद शोक मोह से मुक्त हो सके । जब नारद जैसे भगवान के परम भक्त को भी बिना ज्ञान मोक्ष नहीं मिला तब अन्य जीव केवल मन कल्पित भक्ति द्वारा कैसे मुक्त हो सकेंगे ?

जो साधक अष्टांग योग, सांख्य योग, कर्म योगादि साधन नहीं कर पाते हैं ऐसे मन्द (सरल) बुद्धि के साधक किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी गुरु के द्वारा वेदों के महावाक्यों का तात्पर्य से श्रवण कर निश्चय करलेने से कि मैं ब्रह्म हूँ, मैं आत्मा हूँ, इस प्रकार अहंग्रह चिन्तन द्वारा वे श्रवण परायण पुरुष, मृत्यु रूप संसार सागर को निःसन्देह तर जाते हैं ।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ।।

गीता : १३/२४

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वानेभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ।।

गीता : १३/२५

विष्णु पुराण में प्रसंग आता है कि सनकादि भगवान के दर्शनार्थ द्वार पर पहुँचे तब भगवान विष्णु के द्वार पाल जय, विजयों ने उन्हें रोकदिया तब सनकादिको ने क्रोधित हो उन्हें तीन जन्म तक राक्षस होने का श्राप दे दिया और उस श्राप के फल स्वरूप उनको यह परिणाम भोगना पड़ा, किन्तु भगवान के दर्शन एवं सेवा द्वारा उनका कल्याण नहीं हुआ । जबकि वे सालोक्य एंव सामिप्य मुक्ति प्राप्तकर चुके थे । तब अन्य जीवों का क्या होगा ?

अब विचार करें कि अर्जुन ने सखा भाव से, उद्धव ने दास भाव से, हनुमान ने दास भाव से, लक्ष्मण ने भ्राता भाव से, दशरथ ने पुत्र भाव से, गोपियों ने पति भाव से भगवान की सेवा, पूजा और भक्ति कर भगवान को सब प्रकार से प्रसन्न किया तथा निरन्तर उनका दर्शन, सेवा, भक्ति, ध्यान किया परन्तु उनमें से किसी का भी, देह में आत्म बुद्धि और अज्ञान जन्य मोह इतना करने पर भी निवृत्त नहीं हुआ। जब सभी ने आत्मज्ञान प्राप्त किया तभी इन सभी का ज्ञान द्वारा कल्याण हुआ।

भगवान के दर्शन–सेवा–भक्ति द्वारा अर्जुन का अन्तःकरण भी शुद्ध नहीं हुआ । अर्जुन कहता है कि मेरी बुद्धि मूढ़ता को प्राप्त होगई है, धर्म के सम्बन्ध मे मैं उचित–अनुचित का निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ ।

भगवान गीता २/३३ में अर्जुन को कहते हैं कि यदि तू इस धर्म युक्त युद्ध को न करेगा तो अपने धर्म और कीर्ति को खोकर पाप को प्राप्त होगा । नरक को प्राप्त कर दुःख भोगेगा ।

अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनङ्क्ष्यसि

गीता : १८/५८

अध्याय १८/५८ में कहा है कि अहंकार के कारण विमुढ़ होकर मेरे वचनों को न सुनेगा तो तू नष्ट हो जायगा अर्थात् परमार्थ पथ से भ्रष्ट हो जायगा।

उपरोक्त भगवान की घोषणा से स्पष्ट हो रहा है की अर्जुन का न तो अहंकार नष्ट हुआ न उसका कल्याण होने की सम्भावना दिखाई पड़ती है ।

स्कन्ध ११, अध्याय ७, १४ से १८ श्लोक में उद्धव भगवान से कह रहा है कि हे प्रभो ! मेरी मति इतनी मुढ़ होगई है कि 'यह मैं हूँ' यह मेरा है इस मनोभाव से मैं अपने आत्म स्वरूप को भूला हुआ मोह–ममता के पाश में जकड़ा हुआ हूँ, अतः मुझे अपने ज्ञानोपदेश को फिर से समझाईये ।

इधर गोपियों का विरह जन्य कष्ट का तो कहना ही क्या ?

अर्जुन, उद्धव, गोपियाँ, हनुमान, लक्ष्मण, शबरी, मीरा, नारद आदि सभी परमभक्तों का अज्ञान बन्धन से तभी मुक्ति हुई जब उनका ब्रह्मज्ञान द्वारा उनके वास्तविक स्वरूप का द्रष्टा–साक्षी आत्म स्वरूप का बोध जाग्रत हुआ । अर्जुन के लिये गिता, उद्धव के लिये भावगत एकादश स्कन्ध तथा गोपियों के कल्याण हेतु दशम स्कन्ध का ८२ अध्याय में ज्ञानोपदेश किया गया है । इससे निश्चय होता है कि बिना आत्मज्ञान के मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है ।

उपरोक्त द्रष्टान्त प्रमाणों से यह निर्णय नहीं कर लेना चाहिये कि कर्म–भक्ति व्यर्थ है, न मैं भक्ति का विरोधि हूँ न कर्म का। जीव के मल विक्षेप तथा आवरण इन तीनों दोषों की निवृत्ति हेतु कर्म, उपसना तथा ज्ञान तीनों साधन आवश्यक है ।

जैसे अन्धकार की निवृत्ति हेतु प्रकाश ही एकमात्र साधन है । किन्तु प्रकाश की सिद्धि के लिये दीपक, तेल, बाती, तीनों सहयोगी

साधन है । बिना इन तीनों के ज्योति का प्रकट होना सम्भव नहीं । किन्तु अन्धकार को दूर करने में प्रकाश के अलावा कोई स्वतन्त्र साधन नहीं है ।

इसी प्रकार अज्ञान को दूर करने हेतु ज्ञान ही एक मात्र स्वतन्त्र साधन है । कर्म, उपासना, योगादि ज्ञान प्राकट्य में सहयोगी साधन है । पर केवल कर्म, भक्ति द्वारा मोक्ष सम्भव नहीं है । संसार बन्धन का मूल हेतु अहंता–अज्ञान को काटने में कर्म–भक्ति कदापि समर्थ नहीं है । क्योंकि भक्ति में भगवान मेरे हैं और मैं भगवान का हूँ इस प्रकार का अहंता के आधार पर ही भक्ति की नीव खड़ी है । फिर वह भक्ति अपने मूल आधार अहंता की जड़ को कैसे काट सकती है ? भक्ति, संसार से ममता हटाकर भगवान के चरण कमलों में ममता को जोड़ती है, परन्तु ममता का प्रवाह बदलने से वह अहंता का नाश करने में समर्थ नहीं होता है ।

भक्ति द्वारा परमात्मा के चरण कमलों का रसपान करो, खुब खेल कुद, क्रीडा, प्रेम की होली खेलो, प्रेमानन्द का पान करो, परन्तु खेल खेल में वास्तविक लक्ष्य को, स्वरूपानन्द आत्मा को मत भूल जाना । ज्ञान से अश्रद्धा, विरोध मत कर बैठना, अन्यथा भक्ति भी दूषित हो जायगी ।

निज प्रभु देखहुँ जगत, का सन करहुँ विरोध

भला जिस ज्ञान की महिमा में, पवित्रता में, गोपनीयता में, प्रत्यक्ष फल दायक सबके सहजता में कहते हैं –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते– गीता : ४/३८

अर्थात् इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला निःसन्देह कुछ भी नहीं है।

भगवान कह रहे हैं कि विशुद्ध भक्ति के लिये इस परम गोपनीय विज्ञान सहित ज्ञान को पुनः भली भाँति कहूँगा। जिस को जानकर तू दुःख रूप संसार से मुक्त हो जायगा ।

यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फल प्रदायक, धर्मयुक्त साधन करने में बहुत सरल, सुगम और अविनाशी है ।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।

– गीता : ९/२

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ।।

– गीता : १४/१

ज्ञान में भी अति उत्तम उस परमज्ञान को मैं तेरे लिये फिर कहूँगा, जिसको जानकर सब मुनि जन इस संसार से मुक्त होकर परम सिद्धि को प्राप्त हो चुके हैं ।

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ।।

गीता : १४/२

इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ इस भाव वृत्ति को धारण करके मेरे स्वरूप को प्राप्त हुए पुरुष सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होते हैं और प्रलयकाल में भी अज्ञानी की तरह अहंता–ममता कर व्याकुल नहीं होते हैं । परन्तु भेदभक्ति करनेवाले सगुण उपासक को तो पुनः पुनः इस मृत्यु संसार में आना पड़ता है । किन्तु मेरे भक्त मुझे किसी भी भाव से भजे, वे मुझे ही प्राप्त होते हैं ।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

गीता : ८/१६

यह सब ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि लोक काल के द्वारा सीमित होने से अनित्य है । सभी लोक जीव को पुनर्जन्म दिलाने वाले हैं, किन्तु आत्म स्वरूप मुझ परमात्मा को सोऽहम् रूप से भजने वाले पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता है ।

भगवान कहते हैं कि जो भक्त निरन्तर मेरे ध्यान, पूजन, भजन में लगे रहते हैं, उन निरन्तर मेरे ध्यान परायण भक्तों को मैं उनके ऊपर अनुग्रह करने के लिये, उनके अन्तःकरण में स्थित होकर मैं स्वयं ही अज्ञान जनित अन्धकार को प्रकाशमय तत्त्वज्ञान रूप दीपक के द्वारा नष्ट कर देता हूँ ।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ।।

गीता : १०/११

इसी आशय से सभी पुराण, शास्त्र एवं धार्मीक ग्रन्थों में कर्म उपासनादि के बाद ज्ञान को स्थान दिया गया है, यदि कर्म, भक्ति से जीव का कल्याण होता तो गीता द्वादश अध्याय एवं भागवत दशम स्कन्ध में ही समाप्त हो जाती । फिर ज्ञान प्रदीप तेरहवें अध्याय व एकादश स्कन्ध को रखने की कोई प्रयोजन नहीं था ।

भगवान श्री राम अपने अनन्य भक्त लक्ष्मण को रामगीता में साक्षात् उपदेश करते हैं –

हे लक्ष्मण ! सब से पहले अपने–अपने वर्णाश्रम के अनुसार शास्त्रोक्त कर्म का यथावत् पालन करके चित्त शुद्ध हो जाने पर, उन

कर्मों को छोड़दे और शम, दमादि साधनों से सम्पन्न हो आत्मज्ञान की प्राप्ति के लिये किसी श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाओ ।

कर्म द्वारा अज्ञान का नाश अथवा अहंता–ममता, राग–द्वेष का नाश नहीं हो सकता । इसलिये बुद्धि,मन को ज्ञान विचार में ही तत्पर होना चाहिये ।

अतः आत्मानुसन्धान में लगे हुए मुमुक्षु को संपूर्ण कर्मों का त्यागकर वेदान्त तत्त्व के ही श्रवण, मनन, निदिध्यासन हेतु प्रयास करना चाहिये ।

कृपया साधक विचारें कि जब श्रीराम अपने अनन्य भक्त लक्ष्मण को यह उपदेश करते हैं तब इस सिद्धान्त की सत्यता में क्या अन्य प्रमाण की जरुरत है, जैसे '**ज्ञान मोक्ष प्रद वेद वखाना**', '**ज्ञाना देव तु कैवल्यम्**' ।

लक्ष्मण जैसी भक्ति, प्रेम, सेवा करने पर भी बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं हो सका, तब हम–आप बिना ज्ञान केवल काल्पनिक भक्ति द्वारा अपना कल्याण कर सकेंगे ? भक्ति में तो भगवान को मध्यम पुरुष या अन्य पुरुष ही माना जाता है, जब कि भगवान पुरुषोत्तम है ।

तावत्गर्जन्ति शास्त्राणी जम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्ति र्यावत्वेदान्त केसरी ।।

अर्थात् सभी शास्त्र जंगल में गीदड़ों के समान उस समय तक ही गर्जना करते है, जब तक कोई वेदान्त केसरी संत का आगमन एवं गर्जना नहीं हुई है ।

ग्राम पंचायत, सिविल कोर्ट एवं हाई कोर्ट के फैसले तभी तक प्रमाणित रहते हैं जब तक की सुप्रिम कोर्ट का फैसला घोषित नहीं हुआ है । सुप्रिम् कोर्ट का फैसले पर सभी निचली कोर्ट के फैसले रद्द कर दिये जाते है।

इसी प्रकार वेदान्त सिद्धान्त के बाद सभी सिद्धान्त गौण हो जाते हैं ।

मोक्षस्य न हि वसोऽस्ति ग्रामान्तरमेव वा ।
अज्ञान हृदय ग्रन्थिश्छेदो मोक्ष इति स्मृतः ।।

शीवगीता

मोक्ष का कोई स्थान विषेश नहीं है और न किसी अन्य ग्राम में ही मोक्ष रहता है। सद्गुरु उपदेश द्वारा जीव का देहभाव एवं कर्ताभाव कटकर द्रष्टा साक्षी आत्म भाव जाग्रत हो जाना ही मोक्ष है ।

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

१।२।१२

यही बात श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं –

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।।

गीता : ४/३४

उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानीयों के पास जाकर समझ, उनको भली भाँति दण्डवत् प्रणाम करके उनकी सेवा करने से, कपट छोड़ सरलता पूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म तत्त्व को जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे ।

यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ।।

– गीता : ४/३५

जिस ज्ञान को जानकर फिर तू इस प्रकार मोह को प्राप्त नहीं होगा तथा हे अर्जुन ! जिस ज्ञान के द्वारा तू सम्पूर्ण भूतों को निःशेष भाव से पहले अपने में और फिर मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा में देख सकेगा ।

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ।।

– गीता : ४/३६

हे अर्जुन ! मेरे द्वारा जो तुझे ज्ञान प्राप्त होगा, उसका यह प्रत्यक्ष चमत्कार होगा कि यदि तू दुनिया के समस्त पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है तो भी तू मेरी ज्ञान नौका पर आरुढ़ होकर निःसन्देह सम्पूर्ण पाप–राशी से, पाप–समुद्र से भलीभाँति तर जायगा ।

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।

– गीता : ४/३७

जैसे प्रज्वलित अग्नि सम्पूर्ण ईंधनों को भस्म करदेता है फिर कोई भी प्रकार की गीली, सुखी, पतली, मोटी लकड़ी शेष नहीं रहती, इसी प्रकार ज्ञानाग्नि द्वारा जीव के अनादिकाल के सभी संचित तथा क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाता है । अज्ञानी की दृष्टि से प्रारब्ध शेष दिखाई पड़ता है। यह कथन तो ऐसा है कि राजा दशरथ का तीन पत्नियाँ थी । दशरथ की मृत्युपर दो पत्नी विधवा हो गई व एक कौशल्या सधवा बची रह गई, क्या ऐसा कहना विवेक पूर्ण होगा ? दशरथ के मरने पर तीनों ही विधवा हुई । इसी प्रकार ज्ञानाग्नि पर सभी कर्म दग्ध हो जाते हैं ।

'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'

– गीता : ४/३८

इस संसार में भव सागर से पार होने के लिये आत्मज्ञान के समान पवित्र करने वाले निःसन्देह अन्य कुछ भी नहीं है ।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।

– गीता : ४/४०

इस ज्ञान से रहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ पथ से अर्थात् मोक्ष प्राप्ति से भ्रष्ट हो जाता है । ऐसे आत्मज्ञान से रहित मनुष्य के लिये न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है ।

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ।।

– गीता : ९/३

श्री भगवान कहते हैं जो इस आत्मज्ञान में श्रद्धा नहीं करते है वे मन्दबुद्धि वाले मुझ आत्म ब्रह्म को न प्राप्त होकर मुत्युरूप संसार चक्र में भ्रमण करते रहते हैं ।

ये शास्त्र विधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ।।

– गीता : १७/१

जो व्यक्ति शास्त्र विधि का, वेदान्त सिद्धान्त का त्याग करके अर्थात् आत्मज्ञान से ही मुक्ति है, ज्ञान बिना मुक्ति नहीं इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं कर अन्य देवी–देवता का पूजन करते हैं उनको तू आसुरी स्वभाव का साधन जानना ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।

– गीता :१७/५

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।

– गीता :१७/६

वे कठिन साधन करने वाले, शास्त्राज्ञा का उलंघन करने वाले भूत समुदाय को और अन्तःकरण में रहने वाले मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं ।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।

– गीता :१६/२३

जो पुरुष वेद सिद्धान्त '**ज्ञानादेव तु कैवल्यम्, ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः**' को न मान कर अपनी इच्छा एवं कामना को लेकर नाना देवी–देवता, भूत–पित्रादि की उपासना करता हैं, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

– गीता :१६/२४

इसलिये हे ममुक्षुओं ! तुम कर्म, उपासना द्वारा मोक्ष प्राप्ति का दुराग्रह त्याग कर आत्मज्ञान का श्रवण, मनन करो । जीव के कल्याण के लिये क्या कर्तव्य है और क्या त्याग करने योग्य है, इसके लिये शास्त्र पर ही विश्वास करना चाहिये ।

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।

– गीता : ९/२३

हे अर्जुन ! यद्यपि श्रद्धासे युक्त जो सकाम भाव से दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझको ही कार्य–कारण दृष्टि से पूजते हैं, किन्तु उनका वह पूजन अज्ञान पूर्वक है ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मुढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।।

– गीता : ७/२५

बुद्धि हीन पुरुष मेरे अजन्मा अविनाशी नित्य आत्मस्वरूप की 'वह ब्रह्म मैं हूँ' इस रूप से उपासना, अहंग्रह ध्यान न करके मन बुद्धि

से अति दूर मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को सगुण साकार मनुष्य की भाँति जन्मने मरने वाले मानते हैं ।

हे अर्जुन ! मैं अपनी योग माया रूप राम, कृष्ण, दुर्गा, गणेष आदि परदे के पिछे छिपा, मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ जैसे बुरखे में रहने वाली महिला या डाकु सबको देखती है किन्तु उसे कोई नहीं जानता है कि वह भीतरवाला पुरुष है, महिला है या नपुन्सक है, गोरा–काला है या बूढा–जवान है। परन्तु वह बुरखावाली सभी को देखती रहती है ।

यह अज्ञानी समुदाय मुझ जन्म रहित अविनाशी परमेश्वर को नहीं जानता अर्थात् मुझे सगुण साकार मनुष्य की भाँति जन्मने मरने वाला जानते हैं इसीलिये वे भी बारम्बार जन्म मृत्यु को प्राप्त होते रहते हैं ।

मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

– गीताः ८/१६

परन्तु हे अर्जुन ! अहंब्रह्मास्मि, सोऽहम् रूप से चिन्तन करने वाले, मुझ आत्म ब्रह्म को मैं रूप जानने वाले मुझको प्राप्त होकर पुर्नजन्म को प्राप्त नहीं होते हैं । मैं कालातीत हूँ और सभी नाम रूपधारी सीमित कालाधीन है ।

यदि द्वैत रूप भक्ति द्वारा ही मुक्ति माने तो फिर अद्वैत सिद्धि शास्त्र की रचना सर्वथा निरर्थक परिश्रम मात्र होगी। क्योंकि इस ग्रन्थ का परिपाद्य विषय तो केवल मोक्ष ही है और वह केवल ज्ञान द्वारा ही उसमें प्रमाणित किया गया है।

यदि भक्ति माता द्वारा ही स्वतन्त्र रूप से बन्धन काटने की सामर्थ्य होती तो ज्ञान, वैराग्य इन दो पुत्रों को जन्म देकर कष्ट क्यों उठाया । उससे तो स्पष्ट है कि वह मुक्ति जैसे महान कार्य को वैराग्य और ज्ञान के बिना करने में सर्वथा असमर्थ थी। तब दो पुत्रों द्वारा मोक्ष

कार्य सम्पन्न हुए । इससे भक्ति साधन और वैराग्य–ज्ञान साध्य प्रमाणित हुए ।

जो लोग कर्मों एवं उनके फलों से विरक्त हो चुके हैं वे ज्ञान योग के अधिकारी है। जिनका चित्त कर्म, उपासना से विरक्त नहीं हुआ है, इनमें दुःख बुद्धि एवं बन्धन भाव जाग्रत नहीं हुआ है, वे सकामी कर्म योग के ही अधिकारी है ।

जो पुरुष न अत्यन्त विरक्त है, न अत्यन्त आसक्त है तथा किसी प्रकार मेरी कथा में श्रद्धा हो गई है, वे भक्ति योग के अधिकारी है ।

ज्ञान योग सार्वोत्तम है, भक्तियोग मध्यम तथा कर्म योग निम्न कोटि के साधकों के लिये साधन है । जो लोग इन कर्म–भक्ति और ज्ञान योग का आश्रय लेते हैं वे यथाक्रम वेदान्त तत्त्व का श्रवण, मनन द्वारा परब्रह्म को जान लेते हैं ।

ज्ञान का स्वरूप

बुद्धि, इन्द्रिय और उनके विषयों के रूप में उनका ज्ञान स्वरूप सद्वस्तु ही सर्वत्र भास रही है। इन सब कार्य वस्तु का नाश होता है इसलिये यह सब मिथ्या और दृश्य है । परन्तु इनके कारण (ज्ञान) स्वरूप अधिष्ठान आत्मा में कोई लेप इसी प्रकार नहीं है । जिस प्रकार अधिष्ठान रूप रज्जु में कल्पित सर्प का कोई लेप नहीं होता ।

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति – ये तीनों बुद्धि की अवस्थाएं है, परन्तु इनके अधिष्ठान अन्तरात्मा में यह सब नानात्व माया मात्र है । एक आत्मा ही सत्य है, वही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप है उसके बिना तीनों अवस्था भ्रान्ति मात्र है ।

जैसे आकाश में बादलों का भाव–अभाव होता है परन्तु आकाश में कुछ नहीं होता । उसी प्रकार ब्रह्म के आश्रय यद्यपि जगत का भाव अभाव होता है तथापि ब्रह्म में कुछ नहीं होता है वह ज्यों का त्यों एकरस ही रहता है।

जैसे स्वर्ण के आश्रित कटक, कुण्डलादि नाना रूपों की प्रतीति होती है परन्तु स्वर्ण में कुछ भी घट–बढ़ नहीं होती, उसी प्रकार ब्रह्म के आश्रय नाना नाम, रूप प्रतीति होते हुए भी ब्रह्म में कुछ लेप नहीं होता है ।

जिस प्रकार बादल सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं और सूर्य से ही प्रकाशित होते हैं और फिर सूर्य के अंश रूप नेत्रों के लिये सूर्य दर्शन में

बाधक बन जाता है । इसी प्रकार ब्रह्म के आश्रित माया ब्रह्म से उत्पप्न अहंकार, ब्रह्म के द्वारा प्रकाशित होता है, ब्रह्म के अंश रूप चिदाभास जीव को ही जानने में अहंकार माया बाधक बन जाती है ।

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः

– गीता : ५/१५

अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका है उसी से अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं ।

ज्ञानेन तु तद्ज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।
तेषा मादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।।

– गीता : ५/१६

परन्तु जिनका वह अज्ञान परमात्मा के तत्त्वज्ञान द्वारा नष्ट कर दिया गया है, उनका वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा को प्रकाशित कर देता है ।

परीक्षित को शुकदेव द्वारा अन्तिम उपदेश–अब तुम यह पशुओं की जैसी धारणा छोड़दो कि मैं मरुँगा। तुम शरीर नहीं हो, तुम न पहले शरीर थे, न आगे शरीर हो सकोगे । जब शरीर नहीं था तब भी तुम थे, तुम सर्वदा अजन्मा, अविनाशी, आत्मा थे, हो और रहोगे।

जैसे आग लकड़ी में रहती हुई लकड़ी से असंग है और लकड़ी के उत्पत्ति–नाश से उसका नाश नहीं होता, वैसे ही देहादिक उत्पत्ति–नाश से तुम्हारा नाश नहीं होता है।

जैसे घट के फूट जाने से घट स्थित आकाश अखण्ड ही रहता है। अज्ञानी लोग ऐसा मानते हैं कि घटनाश से घट स्थित आकाश महाकाश में मिलगया परन्तु वास्तव में तो वह आकाश सदा से अखण्ड ही है । घट बनने, टूटने से आकाश का न खण्ड होता है, न आकाश उसमें जाकर मिलता है।

इसी प्रकार देह पात हो जाने पर तत्त्ववेत्ता के सम्बन्ध में लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि यह जीव अब ब्रह्मलीन होगया। वास्तव में तो वह सदा ब्रह्म ही था, उसकी अब्रह्मता तो अज्ञान कृत कल्पना मात्र ही था।

प्रिय परीक्षित ! तुम इस मृत्युओं की भी मृत्यु अमरात्मा हो। तुम स्वयं परमात्मा हो । तक्षक तो क्या स्वयं मृत्यु भी तुम्हारा स्पर्श नहीं कर सकती । तुम ऐसा ही चिन्तन करो कि मैं ही सर्वाधिष्ठान परब्रह्म हूँ, सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं ही हूँ । अपने अन्तर में स्थित परमात्मा का साक्षात् करो । इस प्रकार तुम अपनी विशुद्ध विवेक वाली बुद्धि को परमात्म चिन्तन से भरपूर करलो।

परीक्षित का स्वानुभव :

अब मैं आपके द्वारा परम अनुग्रहीत और कृत कृत्य हो गया हूँ। आप करुणा के मुर्तिमान स्वरूप है । अब मैं तक्षकादि अथवा मृत्युओं के दल दल से भी अभय हुआ हूँ । अब मैं आपके ज्ञान द्वारा अभय रूप निर्वाण ब्रह्म में अभिन्नता को प्राप्त हो चुका हूँ । आपके द्वारा किये गये ज्ञान उपदेश द्वारा मेरा अज्ञान सर्वथा के लिये नष्ट हो गया है ।

'अहं ब्रह्म परमधाम ब्रह्माहं परम पद'

शुकदेवजी जीव–ब्रह्म के अभेद ज्ञान में ही अपने उपेदश की समाप्ति करते हैं और परीक्षित इसी अभेद ज्ञान से कृत्य कृत्य होते हैं ।

आदि जगद्गुरु शंकाराचार्य जो भगवानशंकर के ही अवतार कहे जाते हैं, उन्होंने तो भुजा ऊँचीकर यह ढिंढोरा पीटा था कि मुक्ति प्राप्ति न अष्टांग योग से होगी, न सांख्य योग से होगी, न कर्म से होगी और न उपासना से हो सकेगी। मोक्ष की सिद्धि तो एकमात्र ब्रह्म और आत्मा के एकत्व ज्ञान द्वारा ही हो सकेगी, अन्य किसी साधन द्वारा सम्भव नहीं है ।

ब्रह्मात्मैक्य ही उनका अखण्ड भजन था, न कि राम राम उच्चारण या जप करना भजन था ।

आत्मा ही ब्रह्म है और उससे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । वेद–वेदान्त का यही परम तात्पर्य है । आत्मा का कर्तृत्व, भोक्तृत्व परिच्छिन्नत्व तथा द्वैत केवल ब्रह्मात्मैक्य के अज्ञान से है और उसी के ज्ञान द्वारा अज्ञान की निवृत्ति होती है ।

▶▶ ▶▶ ▶▶

भगवान श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव अपने अन्तिम समय में कल्याण कि चिन्ता से नारद जी को स्मरण किया । वासुदेव भी नारद ऋषि के दर्शन पाकर मन में बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि आपके दर्शन पाकर मेरा जीवन धन्य हुआ ।

हे नारद ! पूर्व जन्म में मैंने भगवान का भक्ति कर भगवान के दर्शन प्राप्त किया था तथा भगवान ने मुझे वर मांगने के लिये कहा था, किन्तु तब मैंने मोह वश मोक्ष न मांगकर उनसे भगवान को ही पुत्र रूप में मांगा था । उस वरदान के फल स्वरूप भगवान को ही मैंने कृष्ण रूप में पुत्र प्राप्त किया, किन्तु अब मेरा अन्त समय आगया है । अब मेरा कल्याण कैसे हो इस बात की मुझे चिन्ता हो रही है । अतः लोक कल्याण के लिये देह धारण कर विचरण करने वाले हे नारद ! आप मेरे कल्याण का उपाय बताने का कृपा करें । मेरे उद्धार का मार्ग बतलाइये । ताकि मेरा मानव जीवन सार्थक कर सकुँ ।

अब भेदोपासक साधक यहाँ गम्भीरता से विचार करें कि जब सगुण देहधारी भगवान के पिता का भी बिना गुरु द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त किये कल्याण नहीं हो सका, तब कल्पित पाषाण, धातु, मिट्टी, चित्रादि की उपासना करने वाले का क्या बिना आत्मज्ञान के कल्याण हो सकेगा ?

▶▶ ▶▶ ▶▶

काग भुशुण्डि द्वारा गरुड़ को उपदेश

निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण न जानई कोय ।
सुगम आगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होय ।।

– उत्तरकाण्ड : ७६/२९

काग भुशुण्डिजी गरुड़जी को सगुण साकार राम जी के प्रति मोह त्याग कर निर्गुण निराकार आत्मा में अहंता करने का उपदेश कर रहे हैं ।

हे गरुड़जी ! निर्गुण निराकार परमात्मा का सबसे सरल, सहज, सुगम स्वरूप है । परन्तु सगुण साकार नाम रूप को कोई नहीं जानता है । इसलिये उन सगुण रूपधारी भगवान के अनेक प्रकार के सुगम और अगम चरित्रों को सुनकर, देखकर बड़े बड़े त्यागी, तपस्वी, मुनि, ऋषि मर्हर्षियों को भी बुद्धि में भ्रम हो जाता है । नारद, ब्रह्मा जैसे भगवान के सगुण साकार लीला देख भ्रमित हो जाते हैं तब अन्य लोगों के सम्बन्ध में क्या कहा जा सकेगा ?

हे गरुड़ जी ! मैं भी प्रथम रामजी के बाल चरित्र देख भ्रम में पड़गया था। किन्तु लोमश ऋषि के उपदेश ज्ञान द्वारा मेरा भ्रम निवृत्त हो गया । अतः तुम भी सगुण साकार की उपासना का त्याग कर निर्गुण निराकार अपने देह स्थित आत्म चिन्तन परायण हो जाओ ।

साधक विचारें की भगवान के वाहन रूप एवं नित्य साथ रहने वाले गरुड़जी को भ्रम होगया । वे दर्शन, सेवा तथा भक्ति द्वारा कल्याण को प्राप्त नहीं हो सके । तब अन्य जीवों के द्वारा, कल्पित मुर्ति की पूजा द्वारा कल्याण की बात सोचना अज्ञान ही होगा ।

'कर्म कि होहिं स्वरूप हि चीन्हें'

– रामायण, उत्तर खण्ड

आत्मज्ञान हो जाने पर उस आत्म निष्ठ ज्ञानी पुरुष के द्वारा कभी भेद मूलक कर्म–भक्ति नहीं हो सकती । मैं कर्म का कर्ता हूँ एवं मुझसे पृथक् कोई ईश्वर है, जो मेरे कर्म या भक्ति का फल प्रदान करने वाला है, यह विचार एवं कर्म तो अज्ञानी देहाभिमानी पुरुष का ही है । 'द्वैत कि बिनु अज्ञान'–बिना अज्ञान के द्वैत बुद्धि कभी नहीं हो सकती ।

▸▸ ▸▸ ▸▸

भगवान विष्णु एवं गरुड़ संवाद :

गरुड़ पुराण के १६ अध्याय में विष्णु भगवान से गरुड़ ने प्रश्न किया हे प्रभो ! सर्वमान्य सर्वोपरि संसार बन्धन की निवृत्ति और परम मोक्ष की प्राप्ति के लिये मुमुक्षु का क्या साधन कर्त्तव्य है, वह आप कृपा कर बतलाईये ।

भगवान विष्णु ने कहा हे गरुड़ ! इस दृश्य देह संघात जो नश्वर, क्षणभगुंर, दु:ख रूप है, उसमें जो अहंता–ममता (मैं–मेरा) भाव से बन्धा हुआ है वही दु:ख रूप संसार बन्धन में पड़ बारम्बार जन्म–मरण चक्र में फंसा रहता है ।

अस्तु जो सद्गुरु की शरण में जाकर तत्त्वज्ञान द्वारा अहंत्व–ममत्व का मन से त्याग कर दिया है वह आत्मनिष्ठ होकर शाश्वत शान्ति को प्राप्त होता है । सब दु:ख, चिन्ता, अशान्ति, भय और पापों का आश्रय स्थूल देहादि में अहंता–ममता ही इसका (संसार बन्धन का) एकमात्र कारण है ।

कालकूट विष तो वास्तविक विष नहीं है, क्योंकि वह तो केवल एक ही जीवन को नष्ट करता है, किन्तु देहादि एवं इन्द्रिय भोगासक्त मनुष्य अनन्त जन्म पर्यन्त कीट पतंग योनियों में जन्म लेता फिरता दुःख भोगता रहता है ।

इसलिये हे गरुड़जी ! सर्वप्रथम आत्मनिष्ठा द्वारा आत्मज्ञान प्राप्तकर, समस्त दु:खों का मूल इस देहाध्यास को शिघ्रातिशिघ्र त्याग कर देना उचित है । जबतक देहाध्यास की निवृत्ति नहीं होगी तबतक आत्मानुभूति नहीं हो सकेगी । जीव लोहा, रस्सी व फाँसी के फन्दे से छूट जाते हैं किन्तु आशा, तृष्णा, मोह–ममता रूप फाँसी के फंदे से छूटना कठिन सा है । जीव जितनी मात्रा में जगत के व्यक्ति, पदार्थों से मोह करता है उतनी ही गहरी चोंट व शोक रूप कीलें इसके हृदय में गाड़ी जाती है ।

कर्म बन्धन का कारण

चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तुपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण न किंचित्कर्मकोटिभिः ।। वि. चु : ११

संसार में कई व्यक्ति, भक्ति, पूजा, उपासना, ध्यान, योग, मन्त्र, तन्त्र, जप, अनुष्ठान, यज्ञ, प्रार्थना आदि विविध प्रकार के कर्म करते हैं जिनसे केवल चित्तशुद्धि होती है । इन कर्मों से वस्तुपलब्धि अथवा आत्मानुभूति नहीं हो सकती। आत्मानुभूति तो केवल विचार से ही होती है, करोड़ों कर्मों से कभी नहीं हो सकती । अज्ञानवश जिसे विस्मृत कर दिया है उसे पुनः स्मृति में लाना मात्र है । अज्ञान का नाश केवल ज्ञान द्वारा ही सम्भव है ।

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।।

– मुण्डकोपनिषत : १।२।१२

कर्म से प्राप्त हुए सम्पूर्ण लोक भोग एवं पद नाशवान् होने से जन्म–मृत्यु चक्र में डालने वाले है । विवेकी ब्राह्मण उनसे वैराग्य को प्राप्त करें, क्योंकि संसार में अनित्य साधन जो भी कर्म एवं उपासना द्वारा नित्य प्राप्त रूप आत्मा नहीं मिल सकता ।

अतः उस नित्य वस्तु ब्रह्म का साक्षात् करने के अभिलाषी साधक, ज्ञान प्राप्ति के लिये गुरु एवं आश्रम उपेयागी सामग्री लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जावें ।

ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति ।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्नागतागतं कामकामा लभन्ते ।।

– गीता : ९/२१

हे जीव ! सकाम कर्म तथा उपासना करनेवाले हैं वे उस विशाल स्वर्ग लोक के सुख को भोगकर पुण्य क्षीण हो जाने पर पुनः इस मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं । इस प्रकार तीनों वेदों में कहे गये कर्म के शरण हुए और भोग की कामना वाले पुरुष आवागमन को प्राप्त होते हैं ।

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन ।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ।।

– गीता : २/४५

हे अर्जुन ! वेदों का विषय तीन गुण रूप संसार है, जो जन्म–मरण का हेतु है । अतः तुम कर्म, उपासना का त्याग कर त्रिगुणातीत, निर्द्वन्द, नित्य, शुद्ध आत्मभाव में स्थित हो जाओ। योगक्षेम से रहित हो और आत्मवान् बनो।

आब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ।।

– गीता : ८/१६

हे अर्जुन ! ब्रह्मलोक तक के सब लोक पुनरावर्ती स्वभाववाले है । परन्तु हे कौन्तेय ! मुझे प्राप्त होने वाले अर्थात् आत्मभाव को प्राप्त करने वाले साधक पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होते हैं ।

भगवान किसी सिद्धान्त को बल देकर समझाने के लिये उस सिद्धान्त के विरोधी तथ्य को भी उसी के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं ताकि वह साधक उन्हें तुलनात्मक दृष्टि से स्पष्ट समझ सके कि क्या ग्रहण करने योग्य है एवं क्या त्याग करने योग्य है ।

प्रथम पंक्ति में कहा ब्रह्मलोक तक के सब लोक पुनरावर्ती है । इसके विपरीत, जो पुरुष आत्मा का साक्षत् अनुभव करलेता है वह पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता है ।

वेदान्त में क्रम मुक्ति का एक सिद्धान्त प्रतिपादित है । इसके अनुसार जो साधक कर्म, उपासना का एक साथ अनुष्ठान करता है वह कर्म, उपासना के समुच्चय के फल स्वरूप सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के लोक जाकर वहाँ आत्मज्ञान प्राप्तकर मुक्त हो सकता है । आत्म विचार करना आवश्यक होता है । परन्तु कोई मुमुक्षु वर्तमान जीवन में ही किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण ग्रहण कर वेदान्त तत्त्व का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन कर अपने वास्तविक नित्य आत्म स्वरूप का साक्षात् अनुभव करलेता है । वे साधक ब्रह्म के साथ–साथ सोऽहम् भाव करलेते हैं, उन्हें पुनः संसार में अज्ञान सकामी पुरुषों की तरह नहीं आना पड़ता है । वे स्वप्न संसार को पुनः नहीं लौटते है ।

पाषाण लोहमणि मृण्मय विग्रहेषु
पूजा पूनर्जनन भोगकरी मुमुक्षोः ।

तस्मात् यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात्
बाह्यार्चनं परिहरेद पुनर्भवाय ।।

– मैत्रेय उप. २/२६

पत्थर, सोना अथवा मिट्टी द्वारा बनाई गई मूर्तियों की पूजा, मोक्ष की इच्छा रखने वालों को, फिर से जन्म और भोग दिलाने वाली होती है । अतः मोक्ष के साधक को अच्छी तरह विचार कर उन्हें अनित्य जान, इस साधन पथका त्याग कर किसी गुरु से आत्मज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करना ही श्रेयस्कर होगा । आत्मपुजा, सोऽहम् भाव ही सर्वश्रेष्ठ साधन है ।

उत्तमा तत्त्वचिन्तैव मध्यं शास्त्र चिन्तनम् ।
अधमा मन्त्रचिन्ता च तीर्थ भ्रान्त्यधमाधमा ।।

– मैत्रेय उप. : २/२१

आत्मतत्त्व चिन्तन सबसे उत्तम साधन है । शास्त्र चिन्तन मध्य श्रेणी का साधन है । मन्त्र चिन्तन अधम श्रेणी का साधन जो मन्दबुद्धि वालों के लिये है । तीर्थ दर्शन, स्नान द्वारा कल्याण की आशा रखनेवाले अत्यन्त निकृष्ट श्रेणी के लोग होते हैं ।

अस्तु ! परमार्थ प्रेम साधकों को आत्मज्ञान प्राप्ति के लिये अधिक से अधिक प्रयत्न करना चाहिये । आत्मज्ञान प्राप्ति के अन्य सहयोगी साधनों में ही जीवन पर्यन्त बन्धे नहीं रहना चाहिये ।

ज्ञानेनैव हि संसार विनाशो नैव कर्मणा ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं स्वगुरुं गच्छेद्यथा विधि ।।

–३५ भावना उप.

संसार का नाश तो आत्मज्ञान द्वारा ही हो सकेगा । कोटि कर्मों के द्वारा कदापि नहीं हो सकेगा । अतः विधि पूर्वक साधन चतुष्ट सम्पन्न एवं गुरु आश्रम उपयोगी सामग्री लेकर श्रद्धा सहित श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास ज्ञान के लिये चले जायें ।

दग्धस्य दहनं नास्ति पक्वस्य पचनं यथा ।
ज्ञानाग्निदग्धदेहस्य न च श्राद्धं न च क्रिया ।।

–पैङ्गल उप. : ४/७

जिस तरह पहले से जले हुए को फिर कोई नहीं जलाता है या पहले से मरे हुए प्राणी को कोई फिर से मारता नहीं या पहले से पके हुए दाल, भात अन्न को कोई फिर से पकाता नहीं । उसी तरह ज्ञानाग्नि से दग्ध हुए ज्ञानी के लिये कोई अन्तिम संस्कार, श्राद्ध आदि सामाजिक क्रिया करने की आवश्यकता नहीं रहती है ।

तीर्थे दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाणके सदा ।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ।।

जाबाल दर्शन उप. : ४/५७

अखण्ड कल्याण स्वरूप परमात्मा इसी देह में विराजमान है । उसे न जानने वाला मुर्ख तीर्थ, स्नान, जप, पूजा, दर्शन, यज्ञ, काष्ठ और पाषाण में ही परमात्मा को खोजा करता है ।

आत्मतीर्थं समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानि यो व्रजेत ।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्गते ।।

जाबाल दर्शन उप. : ४/५०

प्रत्यक्ष आत्म स्वरूप तीर्थ का त्याग करके परोक्ष वाह्य तीर्थ में जो भटकता रहता है वह मानो ऐसा मूर्ख है जो हाथ में रखे महारत्न का त्याग करके काँच का टुकड़ा पकड़कर प्रसन्न मुद्रा से फिरता रहता है ।

ज्ञान शौचं परित्यज्य बाह्ये यो रमते नरः ।
स मूढः काञ्चनं त्यक्त्वा लोष्ठं ग्रह्णाति सुव्रत ।।

जाबाल दर्शन उप. : १/२२

ज्ञान रूप पवित्रता को त्याग कर जो पुरुष बाहरी पवित्रता में ही रमता है वह तो स्वर्ण को त्याग कर चमकते हुए लोह के टुकड़े को ग्रहण करने वाले मूर्ख के समान है ।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः ।
न चास्ति किञ्चित्कर्तव्यमस्ति चेत न स तत्त्ववित ।।

–जाबाल दर्शन उप. : १/२३

ज्ञान योगी ज्ञान रूपी अमृत में तृप्त हो जाता है । संसार में उसके लिये कुछ भी करना शेष नहीं रहता है । जैसे अमृत पान के पश्चात् अमर होने के लिये कुछ भी औषध सेवन करने की आवश्यकता

नहीं रहती है । यदि वह अपने मुक्ति के लिये कुछ कर्म शेष है, ऐसा मानता है तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं है । आत्मज्ञनी सन्तों के लिये तीनों कालों में कहीं भी, कुछ भी कर्तव्य नहीं है ।

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।

– गीता : १६/२३

जो पुरुष शास्त्र विधि को त्यागकर अपनी इच्छासे मन माना आचरण करता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है, न परमगति को और न सुख को प्राप्त होता है ।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।

गीता : १६/२४

अतः तेरे लिये कर्तव्य–अकर्तव्यकी व्यवस्थामें शास्त्र ही प्रमाण है– ऐसा जानकर तू इस लोकमें शास्त्रविधिसे नियत कर्तव्य–कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्र विधिके अनुसार ही कर्तव्य–कर्म करना चाहिये ।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ।।

गीता : १७/५

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ।।

गीता : १७/६ ।।

जो मनुष्य शास्त्र विधिसे रहित सत्यासत्य, नित्यानित्य विवेक रहित मन कल्पित कर्म करने वाले हैं, जैसे स्नान न करना, अग्नि पर चलना, बर्फ में बैठना, नंगे पैर धूप में चलना, कान, आंख को बन्द

रखना, मौन बने संकेत से या लिखकर बात करना, काटें पर शयन करना, जीभ काट मूर्ति पर चढ़ाना, मुर्दे का मांस खाना, मल खाना, एक हाथ से काम करना, एक पैर से खड़े रहना, नेत्र दृष्टि से दर्पण तोड़ देना, किसी की मृत्यु हेतु अघोर कर्म करना आदि घोर कष्टप्रद तप को तपते हैं । वे दम्भ व अहंकार से युक्त अपने यश, कीर्ति, नाम प्रचार हेतु अधार्मिक होते हुए भी अपने को धार्मिक चिह्न, राम नाम की चादर, गले में बड़ी मोटी रुद्राक्ष माला, हाथ में दण्ड, कमण्डल व धर्म शास्त्र, बड़े लम्बे तिलक, विभुति, मृग, बाघाम्बर लपेटना या आसन पर बैठना, जटा, दाढ़ी, मूंछ आदि धारण कर कामना और आसक्ति बल के अभिमान से फूले रहते हैं ।

वे शरीर रूप से स्थित पंच भूतों और अन्तःकरण में स्थित मन, बुद्धि, अहंकार रूप मुझ साक्षी आत्मा को ही कृश करने वाले हैं, उन अज्ञानियों को तू आसुरी स्वभाव वाला जान ।

कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते ।
तस्मात्कर्म न कुर्वन्ति यतयः पारदर्शिनः ।।

– २/१८ संन्यास उप.

कर्म करने से जीव लोक परलोक के बन्धनों में पड़ जाता है । और ज्ञान प्राप्त करने से वह आवागमन से मुक्त हो जाता है । अतः तत्त्व का दर्शन करने वाले अर्थात् मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा भाव में रहने वाले ज्ञानी लोग कर्म नहीं करते हैं ।

अविचार कृतोबन्धो विचारान्मोक्षो भवति ।
तस्मात्सदा विचारयेत् जगज्जीवपरमात्मनो ।।

– पैंङ्गल उप. २

आत्मा–अनात्मा, जड़–चेतन, दृश्य–द्रष्टा, शिव–शव, स्वयं प्रकाश–पर प्रकाश, क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ के अविचार से ही जीव को बन्धन होता

है और अनात्म देह संघात से भीन्न अपने द्रष्टा साक्षी नित्यात्मा को जान लेना ही मोक्ष का हेतु है । अतः जगत, जीव और ईश्वर का ही सदा विचार करना चाहिये ।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः ।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत ।।

– स्कन्दोपनिषत् : १०

यह देह ही, प्रत्यक्ष, अपरोक्ष, नित्य, परमात्मा का देवालय है । उसमें जीव ही शिव रूप है । अतः अज्ञान रूप देह भाव, कर्ताभाव को त्याग करके, वही 'शिव स्वरूप, चिदानन्द स्वरूप मैं हूँ' इस आत्म चिन्तन द्वारा ही हृदयस्थित परमात्मा की पूजा करना चाहिये । प्रतिमा की पूजा तो अज्ञानी लोगों के मन में परमात्मा के प्रति श्रद्धा जाग्रत करने के लिये कल्पना की गई है ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

– केनोपनिषत् : ६

जिससे सब उत्पन्न होते है, जिसकी शक्ति का अंश पाकर सब जीव अपना जीवन निर्वाह सम्बन्धी कर्म करते हैं तथा प्रारब्ध भोगकर सब जीव जिसमें लय हो जाते हैं वह ब्रह्म है, तुम उसीको सोऽहम् भाव से अहंग्रह उपासना करना। परन्तु अज्ञानी लोग पाषाण, धातु, मिट्टी, काष्ठादि की मन कल्पित मूर्ति बनाकर जिसे भगवान मानते हैं उस अज्ञान कल्पित मूर्ति को तुम कभी उपासना मत करना, क्योंकि वह परमात्मा का वास्तविक मूर्ति नहीं है ।

आत्मा व अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यो

हे मैत्रेय ! यह अपना आत्म स्वरूप ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान करने योग्य है । आत्मज्ञान हो जाने पर सभी का ज्ञान हो जाता है । अनदेखा, देखा हुआ–सा हो जाता है, अनजाना जाना हुआ–

सा हो जाता है । क्योंकि अधिष्ठान आत्मा से भिन्न यह नाम, रूप अध्यस्त जगत कुछ भी नहीं है ।

जिस आदेश के द्वारा न सुना पदार्थ भी सुना हो जाता है, न मनन किया हुआ पदार्थ भी मनन किया हुआ हो जाता है और अनिश्चित पदार्थ भी सुनिश्चित हो जाता है, वह अक्षर आत्मा तुम स्वयं हो ।

लोक में जिस प्रकार मिट्टी के एक पिण्ड द्वारा सम्पूर्ण मिट्टी के कार्य समूह का ज्ञान हो जाता है । आकार तो वाणी के आधार नाम मात्र ही है । सत्य वस्तु तो केवल मिट्टी ही है । इसी प्रकार एक अखण्ड आत्म सत्ता का बोध हो जाने पर समस्त नाम, रूप मिथ्या संसार के दर्शन में एक ब्रह्म का ही साक्षात्कार हो जाता है । नाम रूप तो वाणी का विकार है ।

कर्म में अकर्म व अकर्म में कर्म कैसे हो ?

शुभ कर्म के पेड़ में सुख रूपी फल लगेंगे और विकर्म के पेड़ में दूःख रूप फल लगेंगे । सुख–दुःख भोगने के लिये पुनः देह धारण करना पड़ेगा । सुख स्वर्ग की जंजीर है, दुःख लोह की जंजीर है, दोनों कर्म जीव के देह की केद में डालने वाले है । मुक्ति की प्राप्ति अकर्म से होती है ।

अकर्म अलौकिक क्रिया है । क्रिया होने पर भी उसमें कर्तापन का अहंकार, राग–द्वेष नहीं होने से और प्रभु प्रीत्यार्थ, समष्टि के कल्याण के लिये की हुई क्रिया अकर्म बन जाता है । अकर्म संचित कर्म में जमा नहीं होते, न उसका प्रारब्ध बनता है । इसलिए अकर्म मोक्ष का साधन रूप हो सकता है ।

कर्म में अकर्म देखना याने स्वयं कर्म का कर्ता होने पर भी मैं कर्म का कर्ता नहीं हूँ, ऐसा भाव पैदा हो जाना । यह तभी सम्भव हो सकेगा जब हम कर्म के होने के समय साक्षी भाव से रहे । कर्म करने के लिये मन कहता है, देह प्राण इन्द्रिय सब मिलकर करेंगे, मन भोगना चाहेगा व मैं तो उस कर्म के पटुता, मंदता, अन्धता तीनों प्रकृति को जानता रहता हूँ ।

जब भोजन करने बैठें तब मन में ऐसा जानों की प्राणों को भूख लगी है । प्राणों की तृप्ति के लिये हाथ भोजन को पकड़कर मुख द्वार से डाल रहा है, दांत उसे चबाकर, पीसकर अन्दर पहुँचा रहे हैं, जीभ रस

ले रही है और मन सुख अनुभव कर रहा है । मैं केवल द्रष्टा भाव से, साक्षी भाव से देख रहा हूँ ।

आप भोजन करने बैठें तो साक्षी रूप में दूर खड़े रहकर देखो । साक्षी रूप से देखने की कला ही कर्म को अकर्म बना देती है । इस भावना से व्यक्ति कर्म करता हुआ भी अकर्म बन जाता है । यही कर्म में अकर्म का देखना कहलाता है । देह और मैं पृथक यह होंस रहना, साक्षी भाव में रहना, द्रष्टा भाव में रहने का अभ्यास किया जाय तो कर्म में भी अकर्म दिखाई पड़ता है । जैसे स्वप्न के कर्मों में मैं अकर्म ही रहता हूँ ।

अब अकर्म में कर्म देखना समझे– जैसे सूर्य उदय से सभी जीव अपना–अपना कार्य करने लग जाते हैं, सम्पूर्ण देश का अन्धकार विलीन हो जाता है । सूर्य से आप कहे कि आपने बड़ी कृपा की जीससे सब अन्धकार दूर हो गया। सूर्य कहेगा मैंने कुछ नहीं किया ।

इसी तरह भीतर ही जो साक्षी रूप से बैठा है, वह द्रष्टा पद से खड़ा हो जाय तो उसको सर्वशक्तिमान परमात्मा के साथ तादात्म्य हो जाता है । और वह कर्ता नहीं होने पर भी वह सबकुछ करता है । इसी का नाम अकर्म में भी कर्म का देखना कहते हैं । फिर वह कुछ नहीं करते हुए भी सब कुछ कर रहा है। हावा को भी वही चला रहा है, सूर्य चन्द्र को भी वही चला रहा है, वृक्ष को भी वही बढ़ा रहा है, फूल भी वही खीला रहा है आदि । कर्म सहज होने से उसी का नाम अकर्म है ।

जीवन जीने की कला

हमारे जीवन में जो भी घटना अच्छी या बुरी घटती है वह हमारा ही निमन्त्रण होता है । ऐसी कोई घटना अकस्मात् हमारे जीवन में कभी नहीं घटती जिसको हमने निमन्त्रण न दिया हो ।

हमारे विचार प्रकृति से वैसे ही परिस्थितियाँ खींच लेते है चुम्बक लोह को खींचने की तरह । जैसा हम अधिकांश सोचते हैं वैसा ही अच्छा बुरा हो जाता है, वैसा ही बन जाता है ।

कोई शिकायत न करें और न किसी की शिकायत सुने । नहीं तो जीवन में शिकायत ही रहेंगी ।

वह ध्यान बरम्बार ले जाएं जो तुम होना चाहते हो ।

अपने जीवन में अभाव की शिकायत परमात्मा को मत सुनाओ बल्कि जो मिला है जो घट रहा है उसके लिये धन्यवाद दो व कहो कि मैं आपके न्याय पर बहुत खुश हुँ । आप जो भी कर रहे हैं, करेंगे वह सब मेरे कल्याण के लिये ही है । प्रति रात्रि परमात्मा को धन्यवाद दे ।

हमारा शरीर, जीवन की परिस्थितियाँ हमारे विचार से बना है ।

हमारा मन ही शरीर को बीमार या स्वस्थ करता है । अतः अपने आपको पूर्ण स्वस्थ एवं प्रसन्न अनुभव करें । अपने को विमार महसुस न करें । जैसा आप सोचेगें उधर ही आपकी उर्जा काम करने लग जावेगी। फिर वही लौटकर प्राप्त होगा। हमारे शरीर के कोश प्रतिक्षण बदल रहे हैं, शरीर, इन्द्रिय, मन सब बदल रहे हैं, तो विमारी सदा कैसे रह सकेगी । बिमारी आई है तो जाने के लिये, लेकिन हम बिमारी को नकारात्मक विचार द्वारा बढ़ाते जाते हैं । उसे जाने ही नहीं देते हैं ।

बीमार के पास जाए तो पुष्प ले जावे, उसके स्वस्थ होने की बात करें, किन्तु बीमारी की चर्चा न करें, पहले से अच्छे दिख रहे हो, शिघ्र अच्छे हो जाओगे, इस प्रकार बात करें ।

प्रेम व धन्यवाद से ईश्वर की प्रति भरें रहें । अपने आपको पूर्ण स्वस्थ, युवा अनुभव करें । मैं अब बुढ़ा हो चला, मुझसे नहीं होगा, ऐसा विचार मन में न लावे ।

हानि, चोरी, दुर्घटना का विचार करने से वही घटना घटने लग जाती है ।

हमारा संसार हमारे विचारों से ही निर्मित हुआ है । परमात्मा हमारे संसार को सुखी, दुःखी नहीं करता । जो भी हम चाहे उसे औरों को बाटें तो वही मिलेगा । हमारे जीवन की बागडोर हमारे हाथों में है, न कि और किसी देवी देवता के हाथ में ।

बीमारी होने पर भी प्रसन्न रहें । आप प्रसन्न रहें तभी दुसरों को प्रसन्नता दे सकेंगे । दुसरों से अधिक प्रेम करें चाहे वह स्वीकार करे या न करें । दुसरों की प्रशंसा करे, कोई निंदा या शिकायत न करें । जो कहना है उसी के सम्मुख कहे पीठ पीछे शिकायत, निन्दा कभी न करे, तब आप उतना ही कह पावेगें जैसा हुआ। पीठ पीछे तो आप उसको बहुत मिर्च मसाला मिलाकर बतावेंगे ।

बुरे विचारों से हम दूसरों का नहीं अपना ही नुकसान कर रहे हैं । आयरन गरम होकर ही कपड़ों को गरमी पहुँचाता है, ठण्डा रहकर कपड़ों को गरमी नहीं पहुँचापाती है ।

दूसरे पर क्रोध अग्नि स्वयं को बिना जलाये, नहीं जला सकेगी । परमात्मा को हर क्रिया तथा घटना के लिये धन्यवाद देते रहो फिर वह लाभ की हो या हानि की जो भी दिया है धन्यवाद देते रहे तो उसी से सम्बन्ध बना रहेगा ।